एस. वनाथन मुथुराजा

बनाम

रामलिंगम उर्फ कृष्णमूर्ति गुरुक्कल तथा अन्य

3 अप्रैल, 1997

[के. रामास्वामी तथा डी.पी. वाधवा, न्यायमूर्तिगण]

तमिलनाडु मामूली इनाम (उन्मूलन तथा रैयतवाड़ी में परिवर्तन) अधिनियम, 1963 : धारा 8(2)(ii)।

तहसीलदार द्वारा रैयतवाड़ी पट्टा के अनुदान हेतु स्वतः संज्ञान जाँच का प्रारंभ—तहसीलदार ने पाया कि रैयतवाड़ी पट्टा संस्था के पक्ष में प्रदान किया गया था—अधिकरण के समक्ष दाखिल अपील का निरस्त किया जाना—परिणामस्वरूप संस्था को प्रदान किया गया पट्टा अंतिम हो गया—द्वितीय अपील में विद्वान एकल न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम के अधीन अंतर्विष्ट उपबंधों के बल पर वाद पोषणीय नहीं था—उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील—अभिनिर्धारित किया गया, कि इस वाद में संबंधित अधिनियम पूर्ववर्ती अधिकार का समापन करता है, अधिनियम के अधीन नए अधिकारों का सृजन करता है तथा प्रतिद्वंद्वी दावों की जाँच करने हेतु अधिकरणों को अपेक्षित करता है और प्राथमिक प्राधिकारी के आदेश के विरुद्ध अपील का एक स्वरूप उपबंधित किया गया है—फलस्वरूप, अधिनियम के अधीन निर्णायक बनाए गए अधिकार तथा उपचार को अधिनियम के अधीन पारित आदेशों द्वारा अंतिमता प्रदान की गई है—फलस्वरूप, आवश्यक निहितार्थ द्वारा, दीवानी न्यायालय की अधिकारिता अपवर्जित हो जाती है।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 : धारा 9।

दीवानी न्यायालय—अधिकारिता—कब अपवर्जित हो जाती है—उपधारणा अधिकारिता के पक्ष में होगी—अपवर्जन एक अपवाद होगा—जब दीवानी न्यायालयों की अधिकारिता के अपवर्जित होने का दावा किया जाता है, तब न्यायालय सामान्यतः उपबंधों का कठोर निर्वचन

करते हैं—तमिलनाडु मामूली इनाम (उन्मूलन तथा रैयतवाड़ी में परिवर्तन) अधिनियम, 1963 —अभिनिर्धारित किया गया, कि अधिनियम उससे संबंधित विषयों में अधिकरणों की अधिकारिता का उपबंध करता है तथा उसके अधीन अपीलों/पुनरीक्षणों का अनुक्रम उपबंधित किया गया है, जो उसके अधीन पारित आदेशों को अंतिमता प्रदान करता है—फलस्वरूप, आवश्यक निहितार्थ द्वारा, भूमि सुधार विधियों के अधीन आच्छादित दीवानी प्रकृति के वादों का संज्ञान ग्रहण करने की दीवानी न्यायालय की अधिकारिता अपवर्जित हो जाती है, जिससे न केवल अधिकरण के निर्णयों को अंतिमता प्राप्त होती है, अपितु अधिकरण द्वारा विषयों के निस्तारण को भी सुनिश्चित किया जाता है तथा भूमि जोतने वाले को प्रदान किए गए रैयतवाड़ी पट्टे को निर्णायक बनाया जाता है।

वत्तीचेरूकुरु ग्राम पंचायत बनाम नोरी वेंकटरामा दीक्षितुलु तथा अन्य, ***[1991] अनुपूरक 2 एस.सी.सी. 228, का अवलंबन किया गया।***

तमिलनाडु राज्य बनाम रामलिंगा सामिगल मठ, ***[1985] 4 एस.सी.सी. 10, का उल्लेख किया गया।***

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार : 1986 की दीवानी अपील सं. 3039।

1979 की द्वितीय अपील सं. 222 में मद्रास उच्च न्यायालय के दिनांक 16.7.83 के निर्णय तथा आदेश से।

एस. शिवा सुब्रमणियम तथा आर. अय्यम पेरुमल, अपीलकर्ता की ओर से।

एस. श्रीनिवासन, उत्तरदाताओं की ओर से।

न्यायालय का निम्नलिखित आदेश प्रदत्त किया गया :

विशेष अनुमति द्वारा यह अपील, मद्रास उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा 16 जुलाई, 1983 को द्वितीय अपील सं. 222/79 में दिए गए निर्णय से उत्पन्न हुई है। इस अपील के निस्तारण के प्रयोजन से सभी तथ्यों का उल्लेख करना आवश्यक नहीं है। इतना कहना पर्याप्त होगा कि वादगत संपत्ति के संबंध में एक अय्यासामी गुरुक्कल सामान्य

पूर्वज थे। उनके चार पुत्र थे, अर्थात् अन्नासामी, सुब्बैया, सुंदरा तथा नीलकंठ। रमणी, अय्यासामी गुरुक्कल का पौत्र है, जिसे प्रथम प्रतिवादी के रूप में पक्षकार बनाया गया था। अपीलकर्ता ने दिनांक 6.5.1967 के विक्रय विलेख, प्रदर्श-ए-6 के अधीन संपत्ति में उसका 1/3 भाग क्रय किया था। सुब्बैया गुरुक्कल की अविवाहित अवस्था में मृत्यु हो गई थी; सुंदरा गुरुक्कल तथा नीलकंठ गुरुक्कल का प्रत्येक का 1/3 भाग था; सुंदरा की मृत्यु उसके पुत्र राजारथिना के माध्यम से उसके चार पौत्रों, प्रतिवादी सं. 3 से 6, उसकी विधवा दोराई, प्रतिवादी सं. 7, तथा एक अन्य पुत्र रामलिंगम, प्रतिवादी सं. 2, को छोड़कर हुई। नीलकंठ की मृत्यु उसकी विधवा, प्रतिवादी सं. 8 तथा पुत्री, प्रतिवादी सं. 9, को छोड़कर हुई। उसकी विधवा प्रतिवादी सं. 8 ने दिनांक 26 जून, 1970 के विक्रय विलेख, प्रदर्श-ए-7 के अधीन अपना 1/3 भाग वादी सं. 1 को विक्रय कर दिया था। प्रारंभ में, वादी ने प्रदर्श-ए-6 के अधीन क्रय की गई संपत्ति के संबंध में स्वत्व की घोषणा तथा निषेधाज्ञा हेतु ओ.एस. सं. 1848/67 दाखिल किया था। उसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यद्यपि अविभाजित 1/3 भाग का विक्रय वैध है, तथापि सह-स्वामियों के विरुद्ध कोई निषेधाज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती और इसलिए वाद निरस्त कर दिया गया। प्रदर्श-ए-7 के अधीन संपत्ति के क्रय के पश्चात्, 2/3 भाग के विभाजन तथा उसके पृथक् कब्जे हेतु ओ.एस. सं. 946/1972 दाखिल किया गया। प्रतिवादियों ने लिखित कथन में अभिवचन किया कि भूमि सेवा इनाम भूमि है तथा मंदिर में पूजा संपादन की सेवा से भारित है। चूँकि अय्यासामी गुरुक्कल के ज्येष्ठ पुत्र अन्नासामी अपने कर्तव्य का निर्वहन करने में विफल रहे, इसलिए उन्होंने संपत्ति में अपना अधिकार खो दिया। अंततः सुंदरा ने, कब्जे में रहते हुए, प्रतिकूल कब्जे द्वारा अपना स्वत्व पूर्ण कर लिया और इसलिए अपीलकर्ता ने संपत्ति पर कोई स्वत्व अर्जित नहीं किया। विचारण न्यायालय ने प्रतिरक्षा को स्वीकार किया तथा वाद को निरस्त कर दिया। तथापि, अपील में इसे उलट दिया गया तथा यह अभिनिर्धारित किया गया कि उन्होंने सह-स्वामी के विरुद्ध प्रतिकूल कब्जे द्वारा स्वत्व अर्जित नहीं किया। उस संबंध में निष्कर्ष विधि में सही है।

जब अपील लंबित थी, तब तमिलनाडु मामूली इनाम (उन्मूलन तथा रैयतवाड़ी में परिवर्तन) अधिनियम, 1963 (1963 का अधिनियम 30) के अधीन तहसीलदार ने रैयतवाड़ी पट्टा के अनुदान हेतु *स्वतः संज्ञान* जाँच प्रारंभ की। जाँच के पश्चात्, तहसीलदार ने पाया कि रैयतवाड़ी पट्टा संस्था के पक्ष में प्रदान किया गया था। अधिकरण के समक्ष दाखिल अपील निरस्त कर दी गई। इस प्रकार, संस्था को प्रदान किया गया पट्टा अंतिम हो गया। जब द्वितीय अपील दाखिल की गई, तब विद्वान न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम के अधीन अंतर्विष्ट उपबंधों के बल पर वाद पोषणीय नहीं है। तदनुसार, वाद निरस्त कर दिया गया। इस प्रकार, विशेष अनुमति द्वारा यह अपील।

अधिनियम की धारा 8(2)(ii) के अधीन तहसीलदार द्वारा दिनांक 28 फरवरी, 1974 को प्रदर्श-बी-1 के अधीन प्रदान किए गए पट्टे की पुष्टि की गई थी। अपील में उसकी पुष्टि की गई, जो आदेश अंतिम हो गया है। इस प्रकार, संपत्ति का स्वत्व संस्था में निहित हो गया और फलस्वरूप, पक्षकारों में से किसी का भी संपत्ति में कोई अधिकार, स्वत्व तथा हित नहीं रहा। इसलिए, संस्था को पक्षकार बनाए बिना अपीलकर्ता का वाद पोषणीय नहीं है। धारा 9, सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन, उसमें अंतर्विष्ट उपबंधों के अधीन रहते हुए, न्यायालयों को सभी दीवानी प्रकृति के वादों का विचारण करने की अधिकारिता होगी, सिवाय उन वादों के जिनका संज्ञान या तो स्पष्ट रूप से अथवा निहित रूप से वर्जित है। जब किसी विधिक अधिकार का उल्लंघन होता है, तब वाद संस्थित होगा, जब तक कि ऐसे दीवानी वाद के ग्रहण किए जाने के विरुद्ध कोई वर्जना न हो और दीवानी न्यायालय उसका संज्ञान ग्रहण करेंगे। इसलिए, विधि का सामान्य नियम यह है कि दीवानी न्यायालयों को सभी दीवानी प्रकृति के वादों का विचारण करने की अधिकारिता है, सिवाय उनके जिनका संज्ञान या तो स्पष्ट रूप से अथवा आवश्यक निहितार्थ द्वारा अपवर्जित है। निर्वचन का नियम यह है कि विधि के शासन द्वारा संचालित लोकतांत्रिक व्यवस्था में प्रत्येक उपधारणा अधिकार तथा उपचार के अस्तित्व के पक्ष में की जाएगी और दीवानी न्यायालयों की अधिकारिता

उपकल्पित की जाती है। इसलिए, अपवर्जन सामान्यतः एक अपवाद होगा। जब दीवानी न्यायालयों की अधिकारिता के अपवर्जित होने का दावा किया जाता है, तब न्यायालय सामान्यतः उपबंधों का कठोर निर्वचन करते हैं। तथापि, दीवानी विवादों के दीवानी अधिनिर्णयन के विकास में, अधिनिर्णयन की लंबितता तथा पदानुक्रमिक स्तरों पर असामान्य विलंब के कारण, विधियाँ हस्तक्षेप करती हैं तथा कम व्यय वाली किन्तु शीघ्र निस्तारण वाली दीवानी विवादों के समाधान की वैकल्पिक प्रणाली उपबंधित करती हैं। यह सुस्थापित विधिक स्थिति है कि यदि सीमित अधिकारिता वाला अधिकरण अनन्य अधिकारिता ग्रहण नहीं कर सकता तथा विवाद का स्वयं निर्णायक रूप से निर्णय नहीं कर सकता, तो ऐसी स्थिति में यह न्यायालय है जिसे यह निर्णय करना अपेक्षित है कि क्या सीमित अधिकारिता वाले अधिकरण ने अधिकारिता का सही रूप से ग्रहण किया तथा अपने सीमित क्षेत्र के भीतर विवाद का निर्णय किया। यह सुस्थापित विधि है कि जब किसी अधिकरण को अधिकारिता प्रदान की जाती है, तब न्यायालय यह परीक्षण करते हैं कि क्या अधिकारिता के मूलभूत सिद्धांतों का अनुसरण किया गया तथा अधिकरणों द्वारा निर्णय किया गया, जबकि गुण-दोष के आधार पर निर्णय अधिकरण पर छोड़ दिया जाता है। यह भी समान रूप से सुस्थापित विधिक स्थिति है कि जहाँ कोई विधि विशेष अधिकरण के आदेशों को अंतिमता प्रदान करती है, वहाँ दीवानी न्यायालय की अधिकारिता अपवर्जित मानी जानी चाहिए, यदि ऐसा पर्याप्त उपचार उपलब्ध है जो वह कर सकता है जो सामान्यतः दीवानी न्यायालय किसी वाद में करता। तथापि, ऐसा उपबंध उन मामलों को अपवर्जित नहीं करता जहाँ विशेष अधिनियम के उपबंधों का अनुपालन नहीं किया गया है अथवा वैधानिक अधिकरण ने न्यायिक प्रक्रिया के मूलभूत सिद्धांतों के अनुरूप कार्य नहीं किया है। जहाँ न्यायालय की अधिकारिता का स्पष्ट वर्जन है, वहाँ प्रदत्त उपचारों की पर्याप्तता अथवा परिपूर्णता का पता लगाने हेतु विशेष अधिनियम की योजना का परीक्षण प्रासंगिक हो सकता है, किन्तु दीवानी न्यायालय की अधिकारिता को बनाए रखने के लिए निर्णायक नहीं है। जहाँ कोई स्पष्ट अपवर्जन नहीं है,

वहाँ आशय का पता लगाने हेतु उपचारों तथा विशेष अधिनियम की योजना का परीक्षण आवश्यक हो जाता है और जाँच का परिणाम निर्णायक हो सकता है। उत्तरवर्ती स्थिति में यह आवश्यक है कि विधि कोई विशेष अधिकार अथवा दायित्व सृजित करे तथा उस अधिकार अथवा दायित्व के अवधारण हेतु उपचार उपबंधित करे और आगे यह भी विनिर्दिष्ट करे कि उक्त अधिकार अथवा दायित्व के संबंध में सभी प्रश्न गठित अधिकरण द्वारा अवधारित किए जाएंगे तथा यह प्रश्न कि उपचार सामान्यतः दीवानी न्यायालयों में कार्रवाई से संबद्ध हैं अथवा विधियों द्वारा विनिर्दिष्ट हैं या नहीं, परीक्षण अपेक्षित करता है। इसलिए, प्रत्येक वाद में यह परीक्षण अपेक्षित है कि क्या विधि अधिकार तथा उपचार उपबंधित करती है और क्या अधिनियम की योजना ऐसी है कि उपबंधित प्रक्रिया निर्णायक होगी और फलस्वरूप उस संबंध में दीवानी न्यायालय की अधिकारिता को अपवर्जित कर देगी। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात्, भूमि सुधार सरकार की नीतियों में से एक था, जिसका उद्देश्य भूमि धारण की सामंती प्रणाली का उन्मूलन तथा भूमि जोतने वाले को रैयतवाड़ी पट्टा प्रदान करना था। फलस्वरूप, भूमि सुधार विधियाँ पूर्ववर्ती अधिकारों का समापन करती हैं तथा अधिनियम के अधीन नए अधिकारों का सृजन करती हैं। अधिनियम उससे संबंधित विषयों में अधिकरणों की अधिकारिता का उपबंध करता है तथा उसके अधीन अपीलों/पुनरीक्षणों का अनुक्रम उपबंधित किया गया है, जो उसके अधीन पारित आदेशों को अंतिमता प्रदान करता है। फलस्वरूप, आवश्यक निहितार्थ द्वारा, भूमि सुधार विधियों के अधीन आच्छादित दीवानी प्रकृति के वादों का संज्ञान ग्रहण करने की दीवानी न्यायालय की अधिकारिता अपवर्जित हो जाती है, जिससे न केवल अधिकरण के निर्णयों को अंतिमता प्राप्त होती है, अपितु अधिकरण द्वारा विषयों के निस्तारण को भी सुनिश्चित किया जाता है तथा भूमि जोतने वाले को प्रदान किए गए रैयतवाड़ी पट्टे को निर्णायक बनाया जाता है। दीवानी प्रक्रिया के सामान्य क्रम के अधीन, अधिनियमों द्वारा आच्छादित विषयों से संबंधित दीवानी वादों के विचारण की अधिकारिता समयसाध्य तथा विलंबपूर्ण होने के कारण तथा पक्षकारों के पास वित्तीय संसाधनों के अभाव

अथवा अन्यथा प्रतिरक्षा करने की अक्षमता अथवा अपने अधिकारों के संबंध में ज्ञान के अभाव के कारण, अपीलों के पदानुक्रम सहित शक्ति-क्षीणकारी दीवानी वादों से बचना अभिप्रेत है। इसलिए, स्पष्टतः, भूमि सुधार विधियों के अधीन गठित अधिकरणों द्वारा प्रक्रिया के मूलभूत सिद्धांतों का अनुसरण किए जाने तक, दीवानी वाद आवश्यक निहितार्थ द्वारा अपवर्जित हो जाते हैं। इस वाद में, संबंधित अधिनियम पूर्ववर्ती अधिकार का समापन करता है, अधिनियम के अधीन नए अधिकारों का सृजन करता है तथा प्रतिद्वंद्वी दावों की जाँच करने हेतु अधिकरणों को अपेक्षित करता है और प्राथमिक प्राधिकारी के आदेश के विरुद्ध अपील का एक स्वरूप उपबंधित किया गया है। फलस्वरूप, अधिनियम के अधीन निर्णायक बनाए गए अधिकार तथा उपचार को अधिनियम के अधीन पारित आदेशों द्वारा अंतिमता प्रदान की गई है। फलस्वरूप, आवश्यक निहितार्थ द्वारा, दीवानी न्यायालय की अधिकारिता अपवर्जित हो जाती है।

इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय द्वारा *वतीचेरूकुरु ग्राम पंचायत बनाम नोरी वेंकटरामा दीक्षितुलु तथा अन्य,* [1991] अनुपूरक 2 एस.सी.सी. 228 में प्रतिपादित विधि के दृष्टिगत, जिसमें *तमिलनाडु राज्य बनाम रामलिंगा सामिगल मठ,* [1985] 4 एस.सी.सी. 10 में प्रतिपादित विधि सहित संपूर्ण न्यायनिदर्श विधि पर विचार-विमर्श किया गया था, हमने अभिनिर्धारित किया कि वाद पोषणीय नहीं है, जैसा कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा अभिनिर्धारित किया गया था।

तदनुसार, अपील निरस्त की जाती है। कोई व्यय नहीं।

टी.एन.ए. अपील निरस्त की गई।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता। समस्त व्यावहारिक, कार्यालयीय, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।